

वाविलोनियन अनुकरण

संकेत राउत

Adapt or perish, now as ever, is nature's inexorable

- H.G. Wells

पिछले साल हमारे पड़ोसी किसान के साथ एक बड़ा धोखा हुआ। कोंकण में मानसून के दौरान चारों ओर धान (*Oryza sativa*) की खेती ही दिखाई देती है। तटीय क्षेत्रों में होने वाली अत्यधिक मूसलाधार बारिश के कारण खेत लगभग चार महीनों तक पानी से लबालब भरे रहते हैं। ऐसी परिस्थितियों में धान के अलावा बहुत कम फसलें सफलतापूर्वक उग पाती हैं।

हमारे खेत की तरह ही पड़ोसी किसान ने भी धान की बुवाई की थी। अच्छी वर्षा के कारण उसकी फसल भी बहुत अच्छी बढ़ी। लेकिन कटाई का समय आते-आते उसके खेत में एक अजीब परिवर्तन दिखाई देने लगा। धान की बालियों पर लम्बे-लम्बे नुकीले रेशे निकल आए थे और कुछ दानों का रंग काला पड़ने लगा था। कोंकण में इस पौधे को 'देवभात' (*Echinochloa oryzoides*) कहा जाता है।

देवभात धान से मिलता-जुलता एक जंगली पौधा है। इसके बीजों को खाया जा सकता है, लेकिन वे इतनी आसानी-से झड़ जाते हैं कि कटाई

और उसके बाद की प्रक्रियाओं तक बहुत कम दाने बच पाते हैं। इसी कारण इसे धान के खेतों में उगने वाली एक हानिकारक खरपतवार (weed) माना जाता है जो उस किसान के बीजों में मिलावट के कारण उगी थी। परिणामस्वरूप, पूरे खेत में देवभात फैल गया और पड़ोसी किसान की धान की पैदावार में भारी कमी आ गई।

लेकिन वह किसान इस तरह कैसे फँस गया? क्या बुवाई के समय उसे बीजों के बीच का अन्तर समझ नहीं आया होगा? या फिर रोपाई के दौरान वह देवभात के पौधों की पहचान नहीं कर पाया होगा? यदि वह उन्हें पहचान लेता, तो निश्चित ही इस खेत पर अतिक्रमण करने वाली तथा पैदावार घटाने वाली खरपतवार को समय रहते हटा देता।

रोपाई के समय अनुभवी किसान धान जैसी दिखने वाली खरपतवारों को पहचानकर निकाल देते हैं। किन्तु देवभात के पौधे धान के पौधों से इतने अधिक मिलते-जुलते हैं कि पूरी सावधानी बरतने के बावजूद कुछ पौधे खेत में रह जाते हैं। यह अनुकरण



चित्र-1: धान



चित्र-2: देवभात

(mimicry) का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। ऊपर दिए गए चित्र से धान और देवभात के बीच की समानता तथा उनके अनुकरण का अनुमान लगाया जा सकता है।

20वीं सदी के प्रसिद्ध रूसी वनस्पति वैज्ञानिक निकोलाई वाविलोव (1887-1943) ने इस प्रकार के अनुकरण पर विशेष प्रकाश डाला था। वाविलोव को दुनिया के सबसे प्रतिभाशाली वनस्पति वैज्ञानिकों और आनुवंशिकीविदों में गिना जाता है।

उन्होंने खेती की फसलों की उत्पत्ति, विविधता और उनके जंगली सम्बन्धियों पर महत्वपूर्ण शोध किए। हालाँकि, सोवियत संघ में जोसेफ स्टालिन के शासनकाल के दौरान उन्हें राजनीतिक कारणों से प्रताड़ित किया गया और जेल में डाल दिया गया। जेल की कठोर परिस्थितियों के कारण 1943 में उनकी मृत्यु हो गई। धान और उसकी खरपतवारों के बीच पाए जाने वाले इस विशेष प्रकार के अनुकरण का वर्णन करने में उनके

योगदान के लिए, इसे वाविलोवियन अनुकरण (Vavilovian mimicry) कहा जाता है।

त्री-ध्रुवीय प्रणाली

इस अनुकरण में मॉडल प्रजाति, अनुकरण करने वाली प्रजाति और धोखा खाने वाली प्रजाति यानी कि तीन प्रजातियाँ शामिल होती हैं। ऊपर दिए गए उदाहरण में मॉडल प्रजाति धान है, जिसकी खेती फसल के रूप में की जाती है। इसके गुणों का अनुकरण करने वाली प्रजाति देवभात है, जो धान के खेतों में उगने वाली एक खरपतवार है। चूँकि यह अनुकरण कृषि से जुड़ा है, इसलिए इसमें धोखा खाने वाला प्राणी अधिकांशतः किसान होता है। वाविलोवियन अनुकरण के अन्य उदाहरण भी हम आगे देखेंगे, लेकिन उससे पहले यह समझना आवश्यक है कि इस प्रकार का अनुकरण विकसित कैसे हुआ।

खेती का विकास

वाविलोवियन अनुकरण को समझने के लिए हमें खेती के इतिहास पर एक नज़र डालनी होगी, क्योंकि इस अनुकरण के विकास में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। खेती निरीक्षण और चयन (selection) पर आधारित एक सुव्यवस्थित वैज्ञानिक प्रक्रिया है। इसकी नींव लगभग ईसा पूर्व 10,000 से 12,000 साल पहले

तब पड़ी जब पश्चिम एशिया के फर्टाइल क्रेसेंट (Fertile Crescent) क्षेत्र में मनुष्य ने पहली बार कुछ उपयोगी पौधों के बीजों की योजनाबद्ध ढंग से बुवाई और उनकी देखभाल शुरू की। खेती के कारण मनुष्य ने खानाबदोश जीवन छोड़कर स्थायी बस्तियाँ बसानी शुरू कीं। भोजन की उपलब्धता होने से उसके पास अपने समय और श्रम को अन्य कार्यों में लगाने का अवसर मिला जिसके परिणाम हमें आज के आधुनिक जीवन में देखने को मिलते हैं।

आज खेती की प्रक्रिया में पिछले वर्ष की फसल के बीजों को अगले वर्ष बुआई के लिए बचाकर रखा जाता है। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि पहली बार बोए गए बीज कहाँ से आए होंगे? हम अनुमान लगा सकते हैं कि उस समय मनुष्य को कुछ उपयोगी बीजों, जैसे गेहूँ, जौ आदि की जानकारी रही होगी, जिन्हें खाया जा सकता था। उसने इन बीजों वाली वनस्पतियों को जंगलों या नदी के किनारे उगते हुए देखा होगा। सम्भवतः उसने यह भाँप लिया होगा कि यदि इन उपयोगी बीजों को अपने किसी मनचाहे स्थान पर उगाया जा सके, तो यह उसके लिए अधिक सुविधाजनक होगा।

उन्होंने जंगलों से कुछ बीज एकत्र कर शायद उनको उपयुक्त स्थान पर बोना शुरू किया और इस तरह खेती की शुरुआत हुई। इसका एक अर्थ

यह भी है कि आज की अधिकतर फसलें अपनी जंगली प्रजातियों (wild varieties) से विकसित हुई हैं।

मनुष्य और फसलें

इन वनस्पतियों के भीतर भी मनुष्य ने कुछ प्राकृतिक विविधताएँ देखी होंगी। उदाहरण के लिए, गेहूँ की कुछ किस्मों में दाने छोटे, कुछ में बड़े होते होंगे; कुछ पौधे अधिक बीज देते होंगे, जबकि कुछ की पत्तियाँ लम्बी या चौड़ी होती होंगी। मनुष्य ने इनमें से अधिक उपयोगी प्रकारों का चयन किया और उनके बीजों को अगली फसल के लिए सुरक्षित रखना शुरू किया। उदाहरण के लिए, यदि गेहूँ उगाने का उद्देश्य अधिक अनाज उत्पादन था, तो मनुष्य ऐसे पौधों का चयन करता होगा जिनमें खाने योग्य और बड़े दाने हों एवं जो अधिक बीज उत्पन्न करते हों। वहीं, यदि गेहूँ का उपयोग पशुओं के चारे के लिए किया जा रहा था, तो अधिक और लम्बी पत्तियाँ देने वाले पौधों को प्राथमिकता दी जाती होगी, भले ही उनमें बीजों की संख्या कम हो।

इस चुनाव के अन्य पैमाने भी रहे होंगे। जैसे पौधे का आकार, पकने का समय, रोगों को सहन करने की क्षमता आदि। अलग-अलग फसलों के साथ मनुष्य ने इसी प्रकार चयन और संरक्षण की प्रक्रिया अपनाई। बाद में मनुष्य ने प्रयोगों के माध्यम से और भी अधिक उपयोगी किस्मों का

विकास किया। इसलिए हम कह सकते हैं कि मानवीय हस्तक्षेप के कारण फसलें विकसित (evolve) होती गईं। इसी प्रक्रिया को फसलों का डोमेस्टिकेशन कहा जाता है।

लेकिन इस पूरी प्रक्रिया का परिणाम केवल फसलों के विकास तक ही सीमित नहीं था। खेत में फसलों के साथ प्रतिस्पर्धा करने वाली देवभात जैसी खरपतवारें भी उगती थीं। आज भी खरपतवारों का प्रबन्धन किसानों के सामने एक बड़ी चुनौती है। इसका एक कारण यह है कि खेती की प्रक्रिया के साथ-साथ खरपतवार भी विकसित होते रहे हैं। चूँकि खरपतवार फसलों के साथ पानी, पोषक तत्व और स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं, इसलिए मनुष्य का स्वाभाविक झुकाव खेत से उन्हें उखाड़कर नष्ट करने की ओर रहा। लेकिन अत्यन्त अनुकूलनशील वनस्पतियों के रूप में कुछ खरपतवारों ने ऐसी विशेषताएँ विकसित कर लीं, जिनसे वे मानवीय चयन से बचने में सफल रहीं। इसका एक उल्लेखनीय उदाहरण वाविलोवियन अनुकरण है।

इसमें खरपतवार की प्रजातियाँ फसल जैसी दिखने के साथ-साथ उनके कुछ बाहरी गुणों का अनुकरण करती हैं। वनस्पति वैज्ञानिक निकोलाई वाविलोव ने इस बात की ओर ध्यान दिलाया कि लम्बे समय तक खेती और मानव चयन के दबाव में कुछ खरपतवार इतनी अच्छी तरह

अनुकूलित हो सकती हैं कि उन्हें सम्बन्धित फसल से अलग पहचानना कठिन हो जाता है। हाथ से खरपतवार निकालते समय दृश्यात्मक अनुकरण के कारण फसल जैसी दिखने वाली खरपतवार अनजाने में मानवीय चयन प्रक्रिया से बच जाती है और फसल के साथ-साथ विकसित होती रहती है। इस प्रकार, फसल का डोमेस्टिकेशन और खरपतवारों का अनुकूलन एक-दूसरे से गहरे रूप से जुड़ी हुई प्रक्रियाएँ थीं।

खरपतवारों के इस विकास के कुछ अप्रत्याशित फायदे भी हैं, जिन पर हम आगे चर्चा करेंगे।

आक्रामक अनुकरण

वाविलोवियन अनुकरण त्री-ध्रुवीय प्रणाली है, यह हमने देखा। वाविलोवियन अनुकरण में मॉडल हानिकारक नहीं, बल्कि हानिरहित या उपयोगी प्रजाति होती है। उदाहरण के लिए, किसान के खेत में उगने वाली हानिकारक खरपतवार देवभात मिमिक का काम करती है, जबकि उपयोगी फसल धान मॉडल होती है। किसान यहाँ चयनकर्ता की भूमिका निभाता है।

वाविलोवियन अनुकरण में मॉडल प्रजाति पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, देवभात जैसी खरपतवार अनुकरण के माध्यम से फसल के खेत में अतिक्रमण करती है और धीरे-धीरे फसल के साथ

प्रतिस्पर्धा करती है जो मॉडल प्रजाति के लिए हानिकारक हो सकता है। यदि ऐसी खरपतवार को नियंत्रित न किया जाए, तो वह फसल के क्षेत्र में लगातार बढ़ सकती है और खेत में मॉडल प्रजाति अर्थात् फसल का अनुपात कम हो सकता है। हालाँकि, कृषि में मनुष्य लगातार खरपतवारों को नियंत्रित करता है, इसलिए सामान्यतः ऐसा होने नहीं दिया जाता।

चूँकि वाविलोवियन अनुकरण में अनुकरण के कारण मिमिक को लाभ और मॉडल को हानि होती है, इस दृष्टि से वाविलोवियन अनुकरण को आक्रामक अनुकरण (aggressive mimicry) से जोड़ा जा सकता है।

वाविलोवियन अनुकरण में मॉडल और धोखा खाने वाले के बीच एक प्रकार का चयनात्मक सम्बन्ध होता है। यहाँ मॉडल प्रजाति उपयोगी फसल होती है, जबकि धोखा खाने वाला मनुष्य, विशेषकर किसान, होता है, जो फसल और खरपतवार के बीच अन्तर करके खरपतवार को हटाने का प्रयास करता है। दूसरी ओर, खरपतवार इस चयन दबाव के प्रति लगातार अनुकूलित होती रहती है। यदि कोई खरपतवार धान जैसी दिखाई देती है या उसके कुछ महत्वपूर्ण गुणों का अनुकरण करती है, तो किसान के लिए उसे पहचानना और निकालना कठिन हो जाता है। परिणामस्वरूप, ऐसी खरपतवारें बार-

बार बच निकलती हैं और अगली पीढ़ियों में अनुकरण से जुड़े उनके गुण अधिक फैल सकते हैं। इस प्रकार, किसान द्वारा किया जाने वाला निरन्तर चयन दबाव वाविलोवियन अनुकरण के विकास को प्रेरित करता है।

फसलों के समान दिखाई देने वाली खरपतवारें भी मानवनिर्मित आवास के साथ अनुकूलन करते हुए मानवीय चयन के अधीन आती हैं। कृषि प्रणाली के विशेष वातावरण के कारण कुछ खरपतवारों में 'डोमेस्टिकेशन सिंड्रोम' विकसित हो जाता है। खेत में टिके रहने के लिए खरपतवारें धीरे-धीरे फसल का अधिक-से-अधिक अनुकरण करने लगती हैं और उनमें फसल के कुछ उपयोगी गुण विकसित हो जाते हैं, जैसे बीजों का आकार, पत्तियों का आकार और बीजों का बालियों से आसानी-से न गिरना आदि। परिणामस्वरूप, ये खरपतवारें देखने में फसल के काफी समान हो जाती हैं। खरपतवार जितनी अधिक फसल के समान दिखाई देती है, उतनी ही उसके नष्ट होने की सम्भावना कम हो जाती है। इसी प्रक्रिया के दौरान कभी-कभी द्वितीयक फसलों (secondary crops) का विकास भी होता है। द्वितीयक फसल वह खरपतवार है, जो विकास की इस प्रक्रिया के दौरान अन्ततः मनुष्य के लिए उपयोगी सिद्ध हो जाती है। इसका एक उदाहरण राई (Rye; *Secale montanum*) है।

राई का विकास:

खरपतवार से फसल तक

खरपतवारों का नाश सामान्यतः उनमें बीज आने के बाद किया जाता है, क्योंकि अनुकरण के कारण उनकी पत्तियाँ देखने में काफी हद तक मूल फसल जैसी ही होती हैं। इसी कारण हमारे पड़ोसी किसान को भी धोखा हुआ। धान और देवभात में रोपाई के समय तक बहुत कम अन्तर दिखाई देता है, इसलिए धान के बीजों में मिले देवभात के बीजों को अलग करना अत्यन्त कठिन होता है। हालाँकि, बीज आने के बाद देवभात की बालियों में विकसित होने वाले विशिष्ट कुसों (awns; बाली पर निकले लम्बे, काँटेनुमा रेशे) के आधार पर इसे धान से अलग पहचानना सम्भव हो जाता है। यदि खेत में देवभात अधिक मात्रा में उग जाए, तो किसान अगले वर्ष बुवाई के लिए उस खेत से प्राप्त बीजों का उपयोग नहीं करते हैं। इस प्रकार, देवभात की पहचान और उसके बीजों का खेत से बाहर रह जाना, उसके प्रसार को सीमित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

जंगली राई (wild rye) के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ, जो भूमध्यसागरीय क्षेत्र में बड़े पैमाने पर पाई जाने वाली एक प्रजाति है। शुरुआत में राई केवल गेहूँ और जौ के साथ उगने वाली एक खरपतवार थी, जिसे किसान इन अनाजों से अलग करके



चित्र-3: जौ (*Hordeum vulgare*)



चित्र-4: गेहूँ (*Triticum aestivum*)



चित्र-5: राई (*Secale montanum*)

हटा देते थे। लेकिन विकासक्रम में एक मोड़ आया और इस खरपतवार की स्थिति बदल गई।

चूँकि किसान जंगली राई को गेहूँ और जौ से अलग करके निकाल देते थे, इसलिए लगातार चयन दबाव के कारण राई के वे पौधे अधिक

सफलतापूर्वक बचे, जो दिखने में गेहूँ और जौ के समान थे। इन पौधों को किसान के लिए पहचानना और अलग करना कठिन था, जिसके कारण वे खरपतवार के रूप में खेतों में बने रहे और प्रजनन करते रहे। इस प्रकार, खरपतवार के रूप में खेत

में टिके रहने के लिए फसल के समान दिखाई देने का यह अनुकरण जंगली राई के लिए फायदेमन्द सिद्ध हुआ। दिए गए चित्र में आप गेहूँ, जौ और राई के बीच समानता को देख सकते हैं।

दिखने में गेहूँ के समान होने के कारण किसान जंगली राई को गेहूँ से अलग नहीं कर पाते थे, लेकिन गेहूँ और जंगली राई के बीच एक महत्वपूर्ण अन्तर था, जिसने राई के विस्तार को सीमित कर रखा था। गेहूँ एक वार्षिक फसल है, जिसके दाने प्रत्येक मौसम के अन्त तक पककर तैयार हो जाते हैं। इसके विपरीत, जंगली राई एक बहुवर्षीय (perennial) पौधा है जिसके दाने तैयार होने में लगभग दो वर्ष लगते हैं। इस कारण, कटाई के बाद खेत की जुताई करते समय जंगली राई के अधिकांश पौधे नष्ट हो जाते थे और उनका प्रसार सीमित रहता था। हालाँकि, कभी-कभी ऐसे उत्परिवर्तित (mutated) पौधे उत्पन्न होते रहे होंगे, जिनमें गेहूँ की तरह उसी मौसम के अन्त तक दाने तैयार हो जाते थे, और खेत में गिरे हुए या गेहूँ के बीज में मिले वे दाने इस वनस्पति के वंश को बनाए रखते थे। इस प्रकार, शुरुआती अवस्था में राई की यह किस्म खरपतवार के रूप में अपने अनुकरण के कारण खेत में बनी रही होगी। समय के साथ, यह किस्म विकसित होते हुए धीरे-धीरे गेहूँ के

अधिक निकट दिखाई देने लगी। अन्ततः एक अवस्था ऐसी आई, जब राई में भी गेहूँ के समान बड़े दाने और अधिक मज़बूत बाली जैसी संरचनाएँ विकसित हो गईं। इस प्रकार, गेहूँ के साथ उसका अनुकरण केवल बाहरी रूप तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उसके जीवन-चक्र और कृषि-परिस्थितियों के अनुरूप अन्य महत्वपूर्ण गुणों में भी समानता विकसित हुई।

मनुष्य के लिए उपयोगी सिद्ध होने के कारण राई की इस किस्म का अन्ततः डोमेस्टिकेशन हुआ और वह एक वार्षिक फसल में तब्दील हो गई। अब राई केवल एक खरपतवार नहीं रह गई थी, बल्कि मनुष्य के लिए एक उपयोगी फसल बन चुकी थी। खेत में उसे संरक्षण भी मिलने लगा। मनुष्य अब उसे खेत से उखाड़कर नष्ट करने की बजाय गेहूँ की तरह उसकी खेती करने लगा। इसी प्रक्रिया को वाविलोव ने द्वितीयक या अनुकरण से निर्मित फसलें (secondary/mimetic crops) कहा है, क्योंकि इन फसलों के विकास में अनुकरण की महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। राई के आनुवंशिक अध्ययनों से भी यह संकेत मिलता है कि उसके जंगली किस्म से फसल तक के विकासक्रम में वह एक मध्यवर्ती खरपतवार अवस्था से होकर गुज़री थी।

खरपतवारों की एक प्रमुख विशेषता उनकी मज़बूती और कठिन

परिस्थितियों में भी टिके रहने की क्षमता है, जो कई बार गेहूँ जैसी फसलों की तुलना में अधिक होती है। इसलिए, गेहूँ का अनुकरण करने के कारण जब राई को फसल के रूप में स्वीकार किया गया, तो इसकी खेती उन क्षेत्रों में भी सम्भव हुई जहाँ गेहूँ का उत्पादन कठिन या लगभग असम्भव था, जैसे पहाड़ी क्षेत्र। इस प्रकार, मनुष्य को खेती का विस्तार करने का अवसर राई जैसी खरपतवार के डोमेस्टिकेशन के कारण प्राप्त हुआ।

द्वितीयक फसलों के डोमेस्टिकेशन के दौरान आनुवंशिक विविधता दो चरणों में कम हो सकती है। पहले चरण में, जब मनुष्य खेत से खरपतवारों को उखाड़कर हटाता है, तब मुख्य फसल के समान दिखाई देने वाले कुछ सीमित पौधे ही बच पाते हैं, जबकि अन्य पौधे नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार, खरपतवारों की आबादी में पहले से मौजूद आनुवंशिक विविधता का एक हिस्सा चयन के कारण समाप्त हो जाता है।

दूसरे चरण में, डोमेस्टिकेशन के दौरान मनुष्य अपनी उपयोगिता के आधार पर केवल कुछ पौधों का चयन करता है। इसलिए जंगली आबादी की तुलना में विकसित फसल में आनुवंशिक विविधता बहुत कम दिखाई देती है। राई के मामले में भी इसी प्रकार की प्रक्रिया हुई होगी, जिसमें पहले खरपतवार के रूप में

चयन और बाद में मनुष्य द्वारा किए गए चयन ने उसकी आनुवंशिक विविधता को सीमित किया होगा।

ओट्स का अनुकरण

यही स्थिति ओट्स (*Avena sativa* और *Avena byzantina*) के मामले में भी दिखाई देती है। ओट्स कम उपजाऊ भूमि में भी अच्छी तरह उग सकते हैं और गेहूँ एवं जौ के साथ खरपतवार के रूप में भी पाए जाते हैं। जंगली खरपतवार ओट्स में बीज आसानी-से झड़ने (shattering) के कारण उनकी कटाई और संग्रह करना किसान के लिए कठिन होता था। लेकिन विकासक्रम के दौरान कुछ ऐसे खरपतवार ओट्स पौधे उत्पन्न हुए होंगे, जिनमें बीज आसानी-से न झड़ने (non-shattering) और बाली में दानों को मज़बूती से पकड़े रखने वाली संरचना (tough spindle) विकसित हो गई थी। ऐसे पौधों के बीज कटाई तक बाली में बने रहते थे, जिससे उन्हें एकत्र करना आसान



चित्र-6: ओट्स

हो जाता था। इसलिए ये किस्में मनुष्य के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हुईं और परिणामस्वरूप, ओट्स एक खेती के योग्य फसल के रूप में स्थापित हो गए।

अन्य उदाहरण एवं सीख

वाविलोवियन अनुकरण के अन्य उदाहरणों में सूरजमुखी के खेतों में पाए जाने वाले जंगली सूरजमुखी तथा चुकन्दर (बीट) की फसल के साथ उगने वाला जंगली बीट (wild beet) शामिल हैं। इन खरपतवारों में अपनी सम्बन्धित फसलों से समानता के कारण खेत में बने रहने की क्षमता विकसित हुई।

वाविलोवियन अनुकरण से हम यह समझ सकते हैं कि खरपतवार मनुष्य की कृषि गतिविधियों और उनके द्वारा आरोपित चयन दबाव के साथ लगातार तालमेल बिठाते रहते हैं। लेकिन हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि बदलती परिस्थितियों के

अनुसार राई जैसी कुछ खरपतवार आगे चलकर मनुष्य के लिए उपयोगी भी सिद्ध हो सकती हैं।

जिन पौधों को हम अक्सर केवल घास या अनावश्यक खरपतवार समझकर नज़रअन्दाज़ कर देते हैं, वे खरपतवार वास्तव में जीवित रहने के लिए इन्सान को चकमा देने की क्षमता रखते हैं। वाविलोवियन अनुकरण दर्शाता है कि प्रकृति में जीवित रहने की प्रक्रिया कितनी रोचक हो सकती है।

वाविलोव का यह कार्य बेहद दिलचस्प है। वनस्पति जगत का उनका अध्ययन जितना व्यापक था, उतना ही गहरा भी था। दूसरी ओर, स्वयं वाविलोव भी एक प्रेरणा-स्रोत के रूप में उभरकर सामने आते हैं। वाविलोव का चरित्र हमें वैज्ञानिक जगत में स्वतंत्र सोच, सत्य की खोज और अपने निष्कर्षों को स्वतंत्र रूप से व्यक्त करने के महत्व की याद दिलाता है।

संकेत राउत: वन्यजीव प्रेमी हैं तथा वन्यजीव अध्ययनों एवं गणनाओं में भाग लेते रहते हैं। पक्षी और तितलियाँ रुचि के मुख्य क्षेत्र हैं। जंगली जानवरों के बारे में पढ़ने में और उनके व्यवहार का विश्लेषण करने में आनन्द आता है। शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत हैं और शिक्षक प्रशिक्षण का कार्य करते हैं।

सभी फोटो इंटरनेट से साभार।

सन्दर्भ:

- <https://www.sciencedirect.com/science/article/pii/S1674205222002659>
- <https://onlinelibrary.wiley.com/doi/10.1111/wre.12566>
- <https://bioone.org/journals/weed-science/volume-62/issue-2/WS-D-13-00122.1/Vavilovian-Mimicry--Nikolai-Vavilov-and-His-Little-Known-Impact/10.1614/WS-D-13-00122.1.full>
- Vavilovian mimicry - Wikipedia